शताब्दी

अशोक गुप्ता

हिन्दी ADDA

शताब्दी

वह युवक, जो अपने बूढ़े माता पिता को लेकर शताब्दी एक्सप्रेस के चेयर कार कोच में तीर्थयात्रा के लिए अभी अभी बैठा है, श्रवण कुमार उसका असली नाम नहीं है। उसके पिता के भी रिटायर होने में अभी करीब साल भर बाकी है। उसकी माँ का हौसला भी अपनी बहू और पोते पोतियों को लेकर बुलन्द है। इस तरह उसके पिता और माँ, दोनों

में से कोई भी खुद को बूढ़ा मान लेने के लिए मानसिक रूप से तैयार नहीं है। इस दोनों की आँखें भी ठीक ही ठाक है, यह शताब्दी एक्सप्रेस भी, कुछ भी हो, कम से कम बहँगी तो नहीं है, फिर भी कथाकार के नाते इतनी छूट तो मैं आपसे लूँगा ही, कि मैं उस युवक को श्रवण कुमार कहता चलूँ।

शताब्दी एक्सप्रेस की वातानुकूलित चेयर कार। भोर की चाय दिए जाने के बाद की वह चुप्पी जारी है जो नाश्ता बाँटने की तैयारी कहलाती है। अखबार सबको मिल चुके हैं। कंडक्टर इक्का-दुक्का घुसपैठियों को धीरज से निपटा रहा है, उतने ही धीरज से, जितने से लोग कोच में किशोरी अमोनकर को सुन रहे हैं।

श्रवण के पिता किसी सरकारी अनुभाग में सेक्शन ऑफिसर हैं। एक बेटा और एक बेटी ब्याह चुके है। जिम्मेदारी के नाम पर बस श्रवण की शादी होनी रहती है। श्रवण के पिता की गिनती दफ्तर और समाज में समझदार सयाने आदमी की तरह होती है, इस नाते उनके चेहरे से यह टपक नहीं रहा है कि शताब्दी एक्सप्रेस में उनकी यह पहली यात्रा है। हालाँकि, मिनरल वॉटर की बोतल का ढक्कन खोलने की अटपटी कोशिश, जो पिछले पाँच मिनट से जारी है, हालात का यही बयान पेश करती है।

श्रवण कुमार की माँ... मुँहफट, तेज तर्रार, किसी की क्या परवाह करनी टाइप महिला, बाकायदा जाहिर कर रही हैं कि रेलयात्रा के ऐसे दो कौड़ी के माहौल से उनका पहला वास्ता है। उनके जमाने में तो...।

कोच में नाश्ता बँट चुका है। इस नजारे के साथ श्रवण परिवार का कौतुक इस कहानी का विषय नहीं है। एक संक्षिप्त से भूचाल के बाद श्रवण की माँ ने यह इजाजत दे दी कि श्रवण के पिता नाश्ते में ऑमलेट ले लें, और कुछ देर में स्थितियाँ सम पर आ गयीं।

'बड़ी ने तुलसी को पानी तो दिया होगा न...?'

माँ की बतकही शुरू होनी थी, तो हुई।

श्रवण के पिता ने अखबार उठा लिया, हालाँकि कान उन्होंने अपनी भागवान के पास ही रख छोड़े थे। पता नहीं कब, क्या कह बैठें...।

श्रवण की माँ ने नाश्ते के बाद एक पान खाया और एक बीड़ा पति की और बढ़ा दिया।

'नित्ती क्या कर रही होगी इस बखत...? लड़ तो नहीं रही होगी अपने भाई चेतन के साथ...? माँ तो उसकी निरी निकम्मी है। कहीं बैठी होगी अखबार ले कर, बच्चे चाहे भाड़ में जाएँ।'

'भाड़ कहाँ है अपने घर में, बताओ जरा...?' कह सकते तो कहते श्रवण के पिता, लेकिन चुप रहे वह, और अखबार में डूबे रहे।

'जहाँ भी है भाड़ अपने घर में, वह भी इस समय घर में नहीं है, रेलगाड़ी में है।'

बेटे के मजाक से श्रवण की माँ का न तो संवाद खंडित हुआ, न प्रलाप। उल्टे श्रवण ही उनकी लपेट में आ गया,

'कल शाम तुझे दो चिट्ठियाँ दी थीं डालने के लिए, डाल तो दी थीं न, या...' और अब वह श्रवण कुमार की लापरवाही बखानने लगीं।

सब कुछ के बावजूद चुप तन्मय बैठ रहा श्रवण। उसे माँ की आदत का पता है। निंदापुराण उसकी कमजोरी है। उसके बिना उसे चैन कहाँ...? इसके अलावा, जो सामने होगा उसे भूल कर, जो परे होगा उसके प्रसंग में डूबती दिखेंगी वह।

'पता नहीं, बड़ी ने दवाई खाई होगी या नहीं। मँगा तो लेती है अरविन्द से महँगी महँगी शीशी और कैप्सूल, फिर चाहे अलमारी में पड़ी सडती रहे।'

शताब्दी एक्सप्रेस की चाल में एक खास बात यह भी है कि रफ्तार के बावजूद उसमें न तो शोर गूँजता है, न गति की तेजी पता चलती है। इसीलिए तो धीमें स्वर में गाती किशोरी अमोनकर तबले की एक एक थाप के साथ हॉल में सुन रहे का सा आनंद देती है।

ऐसी बेआवाज, मंथर सी गाड़ी में बज रही थीं श्रवण की माँ।

बड़ी बहू... बेटा अरविन्द... पड़ोसिनें और बड़ी के कँगले माँ-बाप...।

श्रवण के पिता ने आज बहुत दिनों बाद ढंग का ऑमलेट खाया था। वह अखबार लिए उसी के स्वाद में डूबे थे, कुछ इस बात से भी आतंकित, कि कहीं कोई बेबात की बकझक न शुरू हो जाय। और श्रवण, वह था कहाँ उस शताब्दी एक्प्रेस के कोच में। वह तो रेंग लिया था भीतर ही भीतर चुपचाप, अन्यत्र कहीं और।

सीता थी और उसका कठोर बनवास। राम उसके मन में थे जिनका अपना निजी बनवास भी था और सीता के बनवास में मूक हिस्सा भी। उन सबके बीच श्रवण लक्ष्मण की तरह। दोनों के बनवास की कंटकमयता समेटते हुए, मुखर था, कि, राम की सीता के बनवास में सिर्फ मूक हिस्सेदारी ही क्यों है, हस्तक्षेप क्यों नहीं...? श्रवण के मन में सपनों का अपना महल भी था, जिसे वह किसी भी तरह लाक्षागृह नहीं होने देना चाहता था। अभी अभी अपनी पढ़ाई पूरी कर के, बतौर चार्टर्ड अकाउन्टेंट उसने अपनी नौकरी शुरू की थी। पढ़ाई के दौरान उसने अपने घर के बाहर एक निर्वासन झेला था, और यह जाना था कि हर निर्वासन कुछ न कुछ सिखाता जरूर है। इस तरह श्रवण ने बाहर पढ़ते हुए जीने का रास्ता बनाना सीखा था। लेकिन घर लौटने के बाद उसे लगा था कि उसका सीखा हुआ बेहद किताबी है और हर लाक्षागृह की धुरी उसकी माँ, एक ऐसी लिपि में लिखी हुई किताब है, जिसे पढ़ पाना वह न बाहर रहते सीख पाया, न पहले घर में रहते हुए। अपने पिता और बड़े भाई की तरह तटस्थ सुन्न हो जाने से श्रवण को बेहद एतराज था, पर वह करे भी तो क्या करे? कोई बेहतर विकल्प भी तो हो उसके पास।

दूसरे शहर से अपने घर लौटते ही, श्रवण कुमार ने अपने सपनो के महल के कपाट अपनी भाभी के आगे खोले थे, जिसमें विभा एक मधुर भीनी सुगंध की तरह भरपूर फैली हुई थी। इस उजास से श्रवण की भाभी बहुत विभोर हुई थीं लेकिन फिर धीरे धीरे बुझती गईं थीं। फिर उन्होंने भी खोले थे अपने मन के कपाट।

सीता, जो श्रवण की भाभी थीं और सीता उनका असली नाम नहीं था, कितना हाहाकार समेटे हैं अपने भीतर, यह श्रवण ने पहली बार जाना था। सास और बहू के बीच की जितनी कपट क्रूर व्यवस्था का शिकार हो सकती थी सीता, उस सबकी दर्द बयार एक बवंडर बन कर घूमती थी सीता के अंतस में... राम, जिसका असली नाम कुछ भी हो, सीता की पीड़ा के सिर्फ खामोश गवाह थे, निवारक नहीं थे, और कई कई बार तो उसका कारण भी थे। दर्द की एक परत इस बात की भी थी सीता के भीतर।

ऐसे में भाव था, तो एक क्षीण सी संभावना, कि शायद नए समय की श्रवण-मना बयार इस घर में किसी नयी सदी का नया पन्ना खोले। श्रवण ने अपनी भाभी के आगे अपना स्वप्न-कपाट खोला। सीता ने श्रवण की स्वप्नकल्पना को सुना और उत्फुल्ल हुई। इस उत्फुल्लता में अभिभूत जरूर हो रहा था, लेकिन उस से यह भी अनदेखा नहीं रह गया कि उसकी भाभी ने अपनी उत्फुल्लता के कवच से अपने विषाद को ढाँप भी लिया है।

ढाँपने से कुछ परे नहीं हो जाता, यह श्रवण कुमार ने अपनी चार्टर्ड अकाउंटेंसी की पढ़ाई के दौरान सीखा था, और यह भी सीखा था कि उन ढाँपे रह गए तथ्यों का संधान कैसे किया जाय... लेकिन इस प्रसंग में...? यह कठिन खाते की जटिल चुनौती है, यह समझ लिया था श्रवण कुमार ने।

पहले स्टेशन पर करीब डेढ़ घंटे चलने के बाद शताब्दी एक्प्रेस रुकी और बिना शोर शराबे के दो मिनट बाद फिर चल दी। फिर भी कुछ हलचल तो हुई और श्रवल कुमार की खुमारी अचकचा कर टूट गयी।

'क्या हुआ...?'

'कुछ नहीं, एक स्टेशन गया कोई...?'

'स्टेशन?' एक नींद समेट कर अब श्रवण की माँ जाग कर ताजादम हो गयी थी। यही वह पल थे जब उनके भीतर बोलने कहने का चक्रवात सक्रिय हो उठता है। बेहद अटपटा लगा भी था उन्हें। उनके पास अब तक की रेल यात्रा के अनेक अनुभव थे। और उनका यही निचोड़ था कि स्टेशन आते ही अफरा-तफरी, टीन के बक्सों की धर पटक, जगह झपटने और बचाने की चालाक सी जिद्दोजहद, उनके बीच फेरी वालों का चाव भरा इंतजार, कि कोई गाता हुआ कुछ बेचने आये और कुछ न कुछ जरूर खरीद लिया जाय। ये क्या, कि स्टेशन आया भी और चला भी गया।

'और ये मुई काला शीशा जड़ी खिडकी...।'

श्रवण के पिता पूरी तन्मयता से एक किताब में डूबे थे और श्रवण अपनी एकाग्रता से अपने सपनों के महल के गलियारों में बेचैन बेबस मुट्ठियाँ भींचता चक्कर काट रहा था। उसके कानों में अपनी भाभी से हुए वार्तालाप के टुकड़े गूँज रहे थे। आँख के आगे तिर तिर आ रहा था भाई का रुँआसा, रुँधा हुआ स्वर, और उसे रह रह कर लग रहा था कि उसे हर हाल दीवार में दरवाजा तलाश लेना है... वह बे-अंदाज दीवार पर ही इधर उधर दस्तक की थप थप देता भटक रहा था। बहुत बहुत थक रहा था श्रवण।

जब भी बहुत थक जाता है श्रवण, विभा तब उसके बहुत पास आ जाती है... उसके बालों पर हाथ फेरती है, ' रिलैक्स केशव, रिलैक्स... क्यों टूटते हो इतना। अगर हमारा प्यार सच्चा है, तो हम एक दूसरे से मिल कर रहेंगे जरूर। अगर हमारा अपने माँ-बाप से प्यार सच्चा है तो वह हमसे टूटेंगे भी नहीं... फिर टेंशन कैसा... कैसी बेचैनी? मैं हूँ न तुम्हारे पास...।'

और श्रवण कुमार रिलैक्स हो जाता। बहँगी बहुत भारी नहीं लगती उसे। पर कब खत्म होगी यह टूटन, कैसे टूटेगी... उफ!

श्रवण कुमार ने अचकचा कर खुद को अपने भीतर से बाहर खींच लिया। शताब्दी एक्सप्रेस के कोच में वापस लौटा वह। पिता हाथ की किताब को गोद में रख कर सोये हुए थे, और माँ कुछ कुछ बोले जा रही थी।

श्रवण को जागा देख कर उसकी माँ उसकी और मुखातिब हुई।

'क्या मँगते भिखारी नहीं आते इस गाड़ी में...? मैं तो रेजगारी बाँध कर चली थी कि तीरथ पर निकली हूँ, कुछ देती चलूँगी राह में... कुछ मन भी लगा रहता है उनके आने-जाने से, पता नहीं कैसी आवाज में माँगते हैं कि दे कर मन सुखी हो जाता है।

माँ बोले जा रही थी और सुनता जा रहा था श्रवण कुमार। गाड़ी बेआवाज चली जा रही थी। पिता की नींद गहरा आई थी। किशोरी अमोनकर के बाद अब शिव शर्मा का संतूर बज रहा था। लेकिन कुछ और भी हो रहा था कहीं, जिसका किसी को पता नहीं चल रहा था, यहाँ तक कि श्रवण कुमार को भी नहीं।

फिर क्या हुआ यकायक कि अपनी सीट से श्रवण कुमार उठ खड़ा हुआ और उसने माँ के चेहरे की ओर बहुत गहराई से ताका।

माँ एकबारगी कुछ समझ नहीं पाई। न ही कोई खास नोटिस लिया उसने।

श्रवण कुमार की नजर माँ के चेहरे पर टिकी रही निष्पलक। कुछ हलचल हुई माँ के भीतर। उसने श्रवण को ऐसा कभी नहीं देखा था। पहले थोडा हँसीं वह, लेकिन जल्दी ही उन्हें एहसास हो गया कि उनका हँसना बेतुका है। एक अबूझ सी परेशानी उनके चेहरे पर घिर आई। संवाद तंत्र थम गया।

कुछ और पल ऐसे ही ताकता रहा श्रवण... एकदम चुप। नजर से माँ के चेहरे पर एकाग्र, और भीतर ही भीतर अपना सारा कुछ समेट कर अर्जुन होता हुआ, कि उसके अंतस का सारा बल एक बिंदु पर सिमट आये।

और अधिक नहीं सह पाई श्रवण की माँ... बेचैनी में उसके मुँह से अपने बेटे के लिए एक गुहार निकली, उसका नाम लेते हुए। इस गुहार ने श्रवण के पिता की तन्द्रा को भी भंग किया। श्रवण अपने भीतर से और भी संगठित हो आया।

'माई...ई...ई... 'एक विलंबित आलाप लिया श्रवण ने। क्षणांश को ठहर कर फिर दोहराया, बिना खंडित हुए, ' माई...ई...ई। ' एक दूर तक खिंचती जाने वाली लंबी टेर, जो जितनी स्वर में थी उतनी ही घनीभूत श्रवण के चेहरे पर भी थी।

निश्चित रूप से यह स्थिति इतनी साफ थी कि श्रवण की माँ को भी उसमें मजाक की गुंजायश जरा भी नहीं लगी और इसी बात ने उन्हें जड़ कर दिया। कुछ भयभीत भी थीं वह, कि पता नहीं क्या होने वाला है। गाड़ी में मँगतों भिखारियों का प्रसंग तो उन्होंने ही उठाया था, पर यह तो श्रवण खुद ही उस चरित्र में उतर आया।

'माई...दे, दे माई... गरीब को दे दे। बेबस लाचार को दे दे...।

पैसा कौड़ी मत दे माई, मिट्टी है, जिसे घर दिया है, उसे छत दे माई...

अपने पिंजरे की मैना को गाने दे माई..।'

पता नहीं कितना दर्द था श्रवण की आवाज में, उस से कहीं ज्यादा, जितना श्रवण की माँ चाहती थी। इसलिये बेचैन थी वह। बेचैनी की पर्त तोड़ने के लिए उसने नीचे रखी टोकरी में से अपना बटुआ निकाला, बटुए में से रेजगारी की थैली...'

'सोना चाँदी रहने दे माता।

ला, अपना अहंकार दे दे। अपनी जुबान पर रखी खड्ग मुझे दे दे।,

आँख में फुँफकारता नाग मुझे दे दे...।

अपना राजपाट, कोठी दुमहला अपने पास रख माई, लाख के घर हैं यह सब, महाभारत तो पढ़ी है तूने, गुणी है माता तू..।'

अब कुछ चौकन्नी हुई श्रवण की माँ। मीलों पीछे छूट चुके घर का हाहाकार उसे याद आने लगा। बेहद गहरा, मंथन मचाता बवंडर उनके भीतर उठने लगा। उनके भीतर, उनकी आँखों के सामने बहुत सी कातर सिसकती छवियाँ उभर कर आने लगी। उन्हें याद आने लगे असहाय सहमे हुए हुए बड़ी और अरविन्द के चेहरे, और अपने पति के भी। यह वह संकेत थे जिन्हें अब तक श्रवण की माँ अपनी जीत का प्रमाण मानती आई है।

ओह, तो यहाँ से उठ रहा है यह दर्द का ज्वार केशव के भीतर।

किसी और दिन का दैनिक जैसा प्रसंग होता यह, तो उसे श्रवण की माँ अपने कभी न हारने वाले शिल्प से मिनट भर में पटखनी दे देतीं...। बुक्का फाड़ कर रोना, अपना सिर पीटना, बाल नोचना, छाती पीटना..। इस कौशल ने उन्हें कभी पराजय नहीं दी थी अब तक, लेकिन इस बार तो सामने बेटे के चेहरे, उसकी आवाज और यहाँ तक कि खड़े होने की भंगिमा तक में गहरी पीर का हाहाकार सघन था। उन्हें लगा कि दर्द के भयंकर दलदल में धँसते हुए आर्तनाद कर रहा है उनका बेटा... उनकी हिम्मत जैसे साथ छोड़ने लगी कि वह एक बार फिर आँख उठा कर श्रवण का चेहरा देख लें, लेकिन एक बगूला सा उठा उनके भीतर, अपनी अब तक की भूमिका के बोध का बगूला, जो उन्होंने अपनी नजर उठा कर बेटे के चेहरे पर टिका दी। श्रवण की आर्तनाद करती हुई आँखों से उनकी नजर मिली और उनकी आँखें भर आईं।

श्रवण ने थरथराती हुई आवाज में भी कहना शुरू किया, 'अपनी आँखें गीली मत कर माई, आँखें खोल कर देख अपनी ममता का संसार... बस इसी नजर का दान अपनी संतान को दे माई।'

'दे दे न माई...ईई...ईई...'

शताब्दी एक्सप्रेस फिर किसी स्टेशन पर रुकने के लिए धीमी होने लगी। श्रवण की माँ अपनी सीट से उठीं और चलते चलते लड़खडा गई। श्रवण तेजी से बढ़ा और उसने माँ को थाम लिया। उसे पता था कि माँ को मुँह धोकर सहज होते हुए लौटना है। उसने पढ़ लिया था अपनी माँ का चेहरा, और चेहरे के रास्ते उनके चित्त का झंझावत, जो शायद एक बदलाव के लिए वहाँ रास्ता बना रहा था।

श्रवण की माँ शताब्दी एक्सप्रेस के वातानुकूलित कोच के वाशबेसिन पर मुँह धो रहीं थीं और श्रवण मन ही मन बात कर रहा था विभा से।

'तुम ठीक कहतीं थीं विभा, ठीक कहतीं थीं। सच्चा है तुम्हारा विश्वास...।'